International Journal of Information Movement Vol.7 Issue I (May 2022)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 1-10

अष्टांग योग – एक योगशास्त्रीय अनुशीलन

डॉ० जन्मेजय
असिस्टेंट प्रोफेसर, योग विभाग
महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढवाल विश्वविद्यालय
पोखरा, पौडी गढवाल, उत्तराखण्ड

शोध सार –महर्षि पतंजलि प्रणीत योग दर्शन जो कि योग सूत्र एवं पातंजल योग दर्शन नाम से विश्व–विख्यात है। योगदर्शन अर्थात् योगसूत्र हमारे जीवन दर्शन, पुरूषार्थ, ज्ञान, भक्ति, कर्म, ध्यान योग आदि योग–साधना मार्ग का दर्पण–सदृश प्रत्यक्ष दर्शन कराने का उत्कृष्ट योग–ग्रन्थ है। इसे योग की गंगा स्वरूप ही समझ कर योगांगों का श्रद्धापूर्वक नियमित और निरन्तर सांगोपान रूपी स्नान अर्थात् अभ्यास करना चाहिए। योगदर्शन में सामान्य अर्थात् सर्वसाधारण साधक (योग–श्रद्धालु) से उच्च–स्तरीय साधकों (योगभ्रष्ट) आदि जैसे (भव प्रत्यय योगियों) के लिए योग साधना का वर्णन किया है जिसमें अभ्यास–वैराग्य जैसे उच्चतम साधन उच्च साधकों के लिए एवं क्रिया–योग (तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान) मध्यम साधकों के लिये तथा अष्टांग–योग साधना पद्धति साधारण साधकों के लिए अपनी उच्चतम अवस्था प्राप्ति अर्थात् कैवल्य प्राप्ति पर्यन्त कही है; जोकि योग दर्शन का प्रतिपाद्य विषय है। योग शास्त्रों में अष्टांग को सर्वसाधारण के लिए सर्वश्रेष्ठ मानते हुए, उनके अंगों यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का विस्तृत वर्णन किया है। महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग की उपादेयता को स्पष्ट करते हुए योगांगों का लक्षण, भेद व फल सहित वर्णन किया है। इससे अष्टांग योग का व्यक्तिगत स्तर, सामाजिक स्तर, बौद्धिक स्तर और सार्वभौम स्तर पर महत्व सिद्ध होता है; जोकि योग शास्त्रों में कही गयी सर्वांगीण विकास की सर्वश्रेष्ठ साधना पद्धति है।

मुख्य शब्द– अष्टांग योग साधना, योगांगों का दृष्टिकोण एवं फल ।

महर्षि पतंजलि कृत योगसूत्र में वर्णित अष्टांग योग में निम्न आठ अंग सन्निहित हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि।[1] क्रमशः प्रथम पाँच अंग को बहिरंग साधन एवं अन्तिम तीन अंगों को अन्तरंग साधन कहा गया है।

अष्टांग योग का उपदेश अशुद्धि को नष्ट करने एवं ज्ञान के प्रकाश से विवेक ख्याति प्राप्त करने के लिए किया गया है[2], क्योंकि विवेकख्याति का उदय होने पर पुरुष एवं प्रकृति का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है और वह पुरुष अपने में स्थित हो जाता है। यह स्थिति कैवल्य कहलाती है।[3] अष्टांग योग का अनुपालन करने से मोक्ष प्राप्ति सम्भव है। इन योगांगों का वर्णन निम्न प्रकार है–

1.0 यम– यम के अन्तर्गत निम्न पाँच महाव्रत निहित है– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह।[4] यम रूपी महाव्रत का पालन जाति, देश, काल, समय की शर्तों से बाहर अर्थात् सीमा से परे है अर्थात् यम का पालन सार्वभौम है। इनका पालन सभी अवस्थाओं में सबके साथ, सब जगह, समान भाव से होना ही महाव्रत कहलाता है।[5]

1.1अहिंसा– हीन–कर्म एवं भाव अर्थात् हिंसक कर्म एवं भाव का त्याग ही अहिंसा है। मन, वचन, कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ित न करना ही अहिंसा कहलाती है, इसलिए अहिंसा

पालन के फलस्वरूप अहिंसा पालनकर्ता के समीप हिंसक जीव भी वैरभाव का त्याग कर देते हैं।[6]

1.2सत्य– जैसा देखा सुना ठीक वैसा ही बोलना अर्थात् प्रकट करना सत्य कहलाता है। व्यास भाष्य में वाणी और मन की सार्थकता को सत्य कहा है।[7] सत्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर योग परायण कर्त्तव्य कर्मों के फल का आश्रय प्राप्त हो जाता है।[8]

1.3 अस्तेय– दूसरे के धन को चुराने का अभाव हो जाना ही अस्तेय है।[9] मन, वचन तथा कर्म से बिना आज्ञा के दूसरे की वस्तुओं, हक को अपने अधिकार में न लेना अर्थात् न छिनना अर्थात् चोरी न करना ही अस्तेय कहलाता है। अस्तेय का भाव दृढ़ हो जाने पर वह सब प्रकार के रत्न प्राप्ति का अधिकारी हो जाता है।[10]

1.4 ब्रह्मचर्य– महर्षि व्यास के अनुसार उपस्थेन्द्रिय के अर्थात् गुप्तेन्द्रिय के संयम को ब्रह्मचर्य कहा है।[11] ब्रह्मचर्य से तात्पर्य गुप्तेन्द्रिय से स्खलित होने वाले वीर्य की रक्षा अर्थात् संचय करना है। इसलिए शास्त्रों में निम्न आठ प्रकार के मैथुनों– दर्शन, स्पर्शन, एकांत सेवन, भाषण, विषय कथा, परस्पर क्रीड़ा विषय का ध्यान एवं संग का त्याग करने के लिए कहा है।[12] दक्ष स्मृति के अनुसार भी ब्रह्मचर्य हेतु अष्ट मैथुन वर्जित बताये हैं, जो निम्न है– स्त्री का स्मरण, उसकी चर्चा, उसके साथ क्रीड़ा, उसे देखना, उसके प्रति गुप्त भाषण, उसके साथ संभोग सम्बन्धी संकल्प अथवा विचार रखना, संयोग हेतु प्रयास करना तथा संभोग करना।[13] इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि मन में काम–वासना का विचार मात्र ही 'ब्रह्मचर्य' खण्ड़ित (नाश) करने हेतु पर्याप्त है। भोजवृत्ति के अनुसार उपस्थ अर्थात् जननेन्द्रिय का संयम ही 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है।[14] अतः इस प्रकार वीर्य रक्षा करने से ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा हो जाने पर अतुल्य सामर्थ्य की प्राप्ति होती है।[15]

1.5 अपरिग्रह– भविष्य की चिन्ता छोड़कर आवश्यकता से अधिक संचय प्रवृत्ति का त्याग ही अपरिग्रह है अर्थात् जीवनचर्या हेतु आवश्यकतानुसार सन्तोषपूर्वक संचय वस्तु का उपयोग ही अपरिग्रह है। भोजवृत्ति में भोग वस्तुओं के साधनों को अस्वीकार अर्थात् ग्रहण न करना ही अपरिग्रह कहा है।[16]

2.0 नियम– नियम हमारे जीवन के व्यक्तिगत सिद्धान्त है। जिनसे हम शारीरिक व मानसिक रूप से अनुशासित रहते हैं। नियम के कारण ही हम अपने जीवन के सभी स्तरों (शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आध्यात्मिक) में उन्नति करते हैं। इसके लिये महर्षि पतंजलि ने पाँच नियम– शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर–प्रणिधान कहे हैं।[17]

2.1 शौच– शौच से तात्पर्य दो प्रकार की शुद्धि शारीरिक व मानसिक (अन्तःकरण) स्वच्छता अर्थात् शुद्धि से है। अतः शुद्धि (शौच) अन्तः एवं बाह्य शौच दो प्रकार से होती है।[18] शरीर शुद्धि, मिट्टी, जल आदि द्वारा बाहरी रूप से तथा मल–मूत्र इत्यादि से शौच निवृत्ति एवं धर्माचरण, सत्संग, शुभ गुण विद्याभ्यास यौगिक आहार– हित, मित, पवित्र आहार एवं षट्कर्मों, क्रिया योग द्वारा शरीर की आन्तरिक रूप से शुद्धि होती है तथा मन की शुद्धि मन के कुविचारों के त्याग, ईर्ष्या, द्वेष, मोह, क्रोध इत्यादि मलों के त्याग एवं निवारण तथा ध्यान, प्रणव जप, प्राणायाम भावना–चतुष्ट~य–मैत्री आदि यौगिक क्रियाओं द्वारा मन निर्मल बन जाता है[19] तथा अन्तःकरण सिद्ध होता है। इस प्रकार शौच के पालन से अपने अंगों में वैराग्य और दूसरों से भी संसर्ग करने का अभाव हो जाता है।[20]

2.2 सन्तोष– आवश्यकता से अधिक भोग साधन तथा अनुपयोगी पदार्थों के ग्रहण करने की इच्छा न होना अर्थात् चाह रहित होना सन्तोष कहलाता है।[21] तुष्टि अर्थात् तृप्ति को संतोष कहते हैं।[22] जिससे उत्तम दूसरा कोई सुख नहीं है यही सर्वोत्तम सुख लाभ है।[23] अतः अपने कर्त्तव्य कर्मों का पालन करते हुए, फल ही इच्छा किये बिना जो कुछ भी प्राप्त हो तथा जिस परिस्थिति में जीवन यापन करना पड़े, उसी से सन्तुष्ट रहना ही सन्तोष है।

2.3 तप– अतपस्वी पुरूषों अर्थात् तप न करने वालों का योग सिद्ध नहीं होता है। तप के बिना शुभाशुभ–मिश्रित कर्मों एवम् अविद्यादि क्लेशों का नाश नहीं होता है। अतः तप क्रिया को ग्रहण करना चाहिए[24], क्योंकि 'तपसा किल्विषं हन्ति' अर्थात् तप से पाप भावना एवं अविद्या का नाश होता है[25] तथा द्वन्द्वों (भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, स्थान–आसन, मौन आदि) को सहन करना ही तप है[26] तथा दूसरे शास्त्रों के अनुसार कहे गये कृच्छ, चान्द्रायण व्रत आदि तप कहलाते हैं।[27]

शरीर, वाणी एवं मन के संयमित अनुशासन को तप कहा गया है। जहाँ शरीर व इन्द्रियों को उच्च ध्येय अवस्था के अनुरूप कठोर अनुशासन में ढालना "कायिक तप" कहलाता है। वाणी पर संयम रखना "वाणी तप" है तथा मन को अपवित्र भावों, विचारों से हटाकर नियन्त्रित करना मानसिक तप कहलाता है।[28] गीता में कहा है कि स्वधर्म पालन के लिये कष्ट सहन करना ही तप है।[29] विद्वान जन के लिये वेदाभ्यास करना ही परम तप कहा गया है।[30]

2.4 स्वाध्याय– प्रणव[31] (ओमकार) आदि पवित्र मन्त्रों का अर्थभावना सहित जप करना[32] और कैवल्य (मोक्ष) का उपदेश करने वाले वेद, दर्शन, उपनिषद्, गीता आदि शास्त्रों का अध्ययन करना 'स्वाध्याय' कहलाता है।[34] स्वाध्याय का अर्थ है– 'स्व अध्ययनां स्वाध्याय' अर्थात् अपना

अध्ययन@अपने को जानना ही स्वाध्याय है। अतः इस प्रकार आत्म चिन्तन करना भी स्वाध्याय के अन्तर्गत आता है।[35] स्वाध्याय से ही इष्ट देवता का साक्षात्कार हो जाता है।[36]

2.5 ईश्वर प्रणिधान– ईश्वर के नाम, रूप, लीला, गुण, प्रभाव आदि का श्रवण, कीर्तन मनन करना भक्ति स्वरूप होकर ईश्वर के शरणापन्न हो जाना अर्थात् ईश्वर की शरण में होना ही ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।[37] जब हम ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण की भावना रखते हुए अपने कर्मों को फल की अपेक्षा से रहित होकर ईश्वर को समर्पित करना ही ईश्वर प्रणिधान है[38] तथा इस प्रकार ईश्वर प्रणिधान के पालन से समाधि अवस्था की प्राप्ति हो जाती है।[39]

3.0 आसन

"स्थिरसुखमासनम्" अर्थात् जिस अवस्था में शरीर सुखपूर्वक स्थिर हो, उसे आसन कहते हैं।[40] महर्षि दयानन्द के अनुसार जैसी रूचि वैसा आसन हो अर्थात् ऐसी शारीरिक स्थिति जिसमें शरीर सुखानुभूति प्राप्त करें और मन आत्मा में स्थिर हो, उसे आसन कहते हैं।[41] महर्षि पतंजलि के अनुसार आसन के अभ्यास से द्वन्द्व– सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास इत्यादि तथा शारीरिक एवं मानसिक द्वन्द्वों (अन्तः एवं बाह्य द्वन्द्व) को सहन करने की क्षमता विकसित हो जाती है तथा द्वन्द्वों का आघात नहीं होता।[42] स्वामी स्वात्माराम के अनुसार आसन से शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्थिरता, आरोग्य तथा हल्कापन प्राप्त होते हैं।[43] महर्षि पतंजलि ने आसनों का नामकरण नहीं किया है, केवल यथासुख अर्थात् स्थिरता एवं सुखपूर्वक बैठने की स्थिति का उल्लेख किया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि नाम से कोई आसन नहीं है। इसका अर्थ यह है कि आसनों की संख्या अनेक हैं। इसी सन्दर्भ में व्यास भाष्य पातंजल योगदर्शन में

13 प्रमुख आसनों का वर्णन प्राप्त होता है। जो निम्न है– पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन, सोपाश्रयासन, पर्यङ्कासन, क्रौंचनिषदनासन, हस्तिनिषदनासन, उष्ट्रनिषदनासन, समसंस्थानासन, स्थिर सुखासन एवं यथा सुखासन।[44] इसी प्रकार महर्षि घेरण्ड ने 32 प्रमुख आसनों का वर्णन किया है[45] तथा स्वामी स्वात्माराम ने 15 प्रमुख आसनों का सचित्र वर्णन प्रस्तुत किया है।[46] गीता में भी धड़ शिर, गर्दन को अचल एवं स्थिर कर, नासिकाग्र दृष्टि रखते हुए अन्य दिशा में इधर–उधर न देखते हुए स्थिरता पूर्वक बैठना बताया गया है।[47] इस प्रकार विभिन्न आसनों में सुखपूर्वक एवं स्थिरता युक्त सिद्धि के लिये आसनों में समस्त शारीरिक प्रयत्नों/चेष्टाओं को रोक देना चाहिये तथा अनन्त पदार्थ जैसे– आकाश अथवा परमात्मा आदि में तदाकार होना चाहिए।[48]

4.0 प्राणायाम

महर्षि पतंजलि के अनुसार– आसन की सिद्धि अर्थात् दृढ़ता प्राप्त हो जाने पर श्वास अर्थात् वायु को भीतर लेने और प्रश्वास अर्थात् वायु बाहर छोड़ने की स्वाभाविक गति को अपने सामर्थ्य अनुसार रोक देना ही प्राणायाम है।[49] भोजवृत्ति के अनुसार श्वास व प्रश्वास दोनों की रेचक, कुम्भक एवं पूरक इन तीन प्रकार से शरीर के बाहर व अन्तर दोनों जगह इनकी गति के प्रवाह को स्थिर करना (विच्छेद) ही प्राणायाम कहलाता है।[50] अतः प्राणायाम का तात्पर्य प्राण+आयाम दो शब्द हैं जिसका अर्थ है प्राणवायु का विस्तार करना अर्थात् पूरक, कुम्भक, रेचक के माध्यम से श्वास प्रश्वास को दीर्घ एवं सूक्ष्म बनाना; यही प्राणायाम का उद्देश्य है। प्राणायाम के अभ्यास से ही प्रकाश अर्थात् ज्ञान पर पड़ा आवरण क्षीण हो जाता है[51] तथा मन में धारणा करने की योग्यता भी आ जाती है।[52] इसीलिये स्वामी स्वात्माराम ने प्राणायाम अभ्यास करने हेतु इस प्रकार कहा है कि– प्राणवायु के चलायमान होने पर अर्थात् श्वास के छोटे एवं तीव्र होने पर चित्त भी चंचल (उतना ही चलायमान) होता है तथा वायु के निश्चल (दीर्घ एवं सूक्ष्म) हो जाने पर चित्त भी निश्चल अर्थात् स्थिर हो जाता है। तभी योगाभ्यासी अर्थात् योगी स्थिरता को प्राप्त होता है।[53]

महर्षि पातंजलि ने चार प्रकार के प्राणायाम बताये हैं– (1) बाह्यवृत्ति प्राणायाम, (2) आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम, (3) स्तम्भवृत्ति प्राणायाम, (4) बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम।[54]

प्रथम तीन प्राणायाम सहित कुम्भक है तथा अन्तिम चौथा प्राणायाम केवल कुम्भक है। क्योंकि प्राणायाम के तीन ही भेद होते हैं– पूरक, कुम्भक, रेचक तथा कुम्भक दो प्रकार का होता है– सहित कुम्भक एवं केवल कुम्भक। अतः इन से ही अन्य प्राणायाम के प्रकार प्रतिपादित हुए हैं। अतः केवल कुम्भक की सिद्धि होने तक सहित कुम्भक अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास करते रहना चाहिये।[55]

5.0 प्रत्याहार

प्राणायाम के अभ्यास से हमारी नाड़ियाँ निर्मल एवं शुद्ध हो जाती है, जिससे हमारा मन (चित्त) एवं इन्द्रियाँ भी शुद्ध हो जाते हैं। उसके बाद इन्द्रियों का अपने–अपने विषयों से रहित होकर चित्त के स्वरूप में तदाकार–सा हो जाना ही 'प्रत्याहार' कहलाता है।[56] चित्त की चंचलता प्राणायाम से दूर होने के बाद इन्द्रियों का व्यापार अर्थात् इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्बन्ध भी बन्द सा हो जाता है। इसे प्रत्याहार कहते हैं[57], क्योंकि प्रत्याहार सिद्ध होने पर इन्द्रियाँ पूर्ण रूप से वश में हो जाती है।[58] इन्द्रियों की स्वतन्त्रता का सर्वथा अभाव हो जाता है। अतः यह

कह सकते हैं कि– "सर्व विषयपराङ्मुखत्वं प्रत्याहारः" अर्थात् अपनी समस्त इन्द्रियों के विषयों से मुख मोड़ लेना अर्थात् उनकी उपेक्षा कर देना ही प्रत्याहार है।[59]

महर्षि घेरण्ड के अनुसार इन्द्रियों के माध्यम से मन को नियन्त्रित करने की प्रक्रिया ही 'प्रत्याहार' है। अतः जहाँ जहाँ चंचल, अस्थिर मन विचरण करता है उसे वहाँ वहाँ से लौटाकर आत्मा में लगाना ही प्रत्याहार है। अतः प्रत्याहार के माध्यम से पुरस्कार, तिरस्कार, सुनने में प्रिय (सुखद) एवं अरूचिकर (दुःखद) वचनों से मन को हटाकर आत्मा के वश में करना चाहिये। सुगन्ध, दुर्गन्ध सूँघने में प्रिय, अप्रिय से मन को हटाकर वश में करें। मधुर, अम्ल, तिक्त आदि रसों की ओर आकृष्ट हुए मन को हटाकर आत्मा के वश में करना ही प्रत्याहार है। इस प्रकार प्रत्याहार के ज्ञान एवं पालन से कामादि शत्रुओं का नाश करना उत्तम माना गया है।[60] अतः इस स्थिर न रहने वाले और चंचल मन को जिस विषय में यह विचरता है, वहाँ (उस–उस विषय) से रोककर अर्थात् हटाकर इसे परमात्मा में ही निरूद्ध करें।[61]

6.0 धारणा

किसी भी स्थान विशेष के साथ चित्त को बाँधना ही धारणा कहलाती है।[62] अर्थात् शरीर के बाहर के देश (स्थान या पदार्थ) जैसे– आकाश, सूर्य, चन्द्रमा आदि देवता या गुरू मूर्ति तथा शरीर के भीतर के देश जैसे– नाभिचक्र, हृदयकमल आदि में से किसी एक पर चित्त को लगाना ही धारणा है। इससे यह ज्ञात होता है कि धारणा दो प्रकार की है– (i) आभ्यन्तर धारणा, (ii) बाह्यान्तर धारणा।

6.1 आभ्यन्तर धारणा

अपने शरीरस्थ अंगों अवयवों जैसे– हृदय कमल (हृदय चक्र), नाभि (सूर्य चक्र), मस्तक (आज्ञा चक्र) आदि चक्रों, नासिका के अग्रभाग, जिह्वा के अग्रभाग, तालु आदि स्थानों पर चित्त को स्थिर रखना ही आभ्यन्तर धारणा है।

6.2 बाह्यान्तर धारणा

शरीर के अतिरिक्त सृष्टि में व्याप्त अन्य स्थानों जैसे– सूर्य, चन्द्र एवं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि में चित्त को लगाना ही बाह्य धारणा है।[63]

इसके अतिरिक्त योगतत्त्वोपनिषद् में पंच धारणाओं का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंच महाभूतों में पृथक–पृथक पंच महादेवो के स्वरूप की भावना करके इनमें चित्त लगाना ही पंच धारणा है।[64] ठीक इसी प्रकार महर्षि घेरण्ड ने भी पंच धारणा को अपने तृतीय अध्याय मुद्रा एवं बन्ध के अन्तर्गत स्वीकार किया है।[65] तथा धारणा की पूर्णता अर्थात् सिद्धि होने में पाँच घड़ी[66] अर्थात् 5 घटिका = दो घन्टे (5x24 = 120 मिनट) समय तक चित्त का स्थान विशेष में स्थिर होने का अभ्यास करना चाहिए। जब यह चित्त इस प्रकार स्थित हो जाए तथा उस समय बीच में किसी अन्य विषय में चित्त न जाए तो यह धारणा की दृढ़ स्थिति का होना अर्थात् धारणा की सिद्धि का संकेत है।[68]

7.0 ध्यान

उस धारणा के देश में अर्थात् जिस स्थान विशेष में धारणा द्वारा चित्त को लगाया हुआ है, उसी में ज्ञान का समान प्रवाह अर्थात् चित्तवृत्ति की एकाग्रता होना (एक तार बने रहना) अर्थात् चित्त का एकाग्र हो जाना ही ध्यान कहलाता है।[69] चित्त की एकाग्रता से केवल ध्येय मात्र की एक तरह की वृत्ति (विजातीय वृत्ति रहित केवल सजातीय वृत्ति) का प्रवाह निरन्तर चलना ही ध्यान कहलाता है। ध्यान में केवल ध्येय विषयक वृत्ति अन्य वृत्ति के व्यवधान रहित साठ

घटिका तक बनी रहती है। इससे ध्यान की काल अवधि 24 घण्टे निर्दिष्ट होती है। अतः यह स्पष्ट होता है कि धारणा एवं ध्यान दोनों के स्वरूप में तो कोई अन्तर नहीं है लेकिन इसके काल अवधि में अन्तर है।[70] अर्थात् धारणा का अभ्यास पाँच घटिका पूर्ण होने के पश्चात् भी चित्तवृत्ति उसी ध्येयकार विषय में निरन्तर एकाग्रता बनाते हुए साठ घटिका (24 घंटे) का काल पूर्ण कर लेती है तो यह धारणा ही ध्यान कहलाती है। महर्षि घेरण्ड प्रणीत घेरण्ड संहिता में कहा है कि किसी विषय या वस्तु पर निरन्तर एकाग्रता या चिन्तन की क्रिया ही ध्यान कहलाती है। अतः महर्षि घेरण्ड ने तीन प्रकार का ध्यान बताया है– 'स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान, सूक्ष्म ध्यान'।[71]

शाण्डिल्योपनिषद् में ध्यान के दो भेद बताये हैं– सगुण ध्यान एवं निर्गुण ध्यान।[72] अपने ईष्ट देव या गुरू मूर्ति इत्यादि का ध्यान करना सगुण ध्यान है तथा विशुद्ध आत्मा की यथार्थता का ध्यान करना निर्गुण ध्यान कहलाता है।

साँख्य सूत्र के अनुसार, "रागोपद्धतिर्ध्यानम्" अर्थात् सांसारिक विषयों के प्रति राग अथवा भोगों की प्रवृत्ति की निवृत्ति हो जाना ही ध्यान है।[73] चित्तवृत्ति निरोध हो जाने पर मन का निर्विषय अर्थात् वृत्ति रहित चित्त का होना ही ध्यान है।[74]

8.0 समाधि

"चरमयोगांक समाधिमाह"

अर्थात् समाधि अष्टांग योग का अन्तिम आठवाँ अंग है।

ध्यान पूर्ण होने पर जब केवल ध्येयमात्र की प्रतीति रहती है तथा चित्त अपने स्वरूप से शून्य सा हो जाता है। वह अवस्था समाधि कहलाती है।[75] अर्थात् जब वही ध्यान ध्येय मात्र का प्रकाशक तथा ध्येयाकार सा हो जाता है तब वह अवस्था ध्यानावस्था होती है।

जिस काल में, ध्याता, ध्यान, ध्येय इन तीनों का पृथक–पृथक भाव न रहे अर्थात् ध्याता ज्ञानात्मक रूप से शून्य–सा (भूला हुआ–सा) हो जाए तथा ध्यान भी ध्येय के स्वरूप का सा प्रतीत (ध्येय के आकार का भासित) हो इस ध्यान की स्थिति को समाधि कहते हैं।[76] चित्त के विक्षेपों को दूर कर मन को जिस विषय में निरन्तर एकाग्र किया जाए अर्थात् एकाग्र हो जाए, वह समाधि है।[77]

ध्यानकाल में योगी अर्थात् साधक को चित्त, चित्तवृत्ति एवं चित्तवृत्ति के विषय अर्थात् क्रमशः ध्याता, ध्यान और ध्येय का भान (ज्ञान) बना रहता है। किन्तु जब योगी ध्यान करते करते अपनी ध्यानाकारता (ध्याता व ध्यान) का त्याग करके (स्वरूप शून्य होकर) केवल ध्येय स्थिर हुआ प्रतिभासित होता है तब वह स्थिति समाधि कहलाती है।[78]

महर्षि पतंजलि ने समाधि के निम्न दो भेद बताये हैं– सम्प्रज्ञात समाधि व असम्प्रज्ञात समाधि।

8.1 सम्प्रज्ञात समाधि –

सम्प्रज्ञात समाधि को सबीज समाधि कहते हैं।[79] सम्प्रज्ञात समाधि के चार प्रकार हैं– वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगत।[80] इनमें वितर्कानुगत समाधि भी दो प्रकार की है– सवितर्क समाधि एवं निर्वितर्क समाधि[81] तथा विचारानुगत समाधि के भी दो प्रकार – सविचार समाधि एवं निर्विचार समाधि।[82]

8.2 असम्प्रज्ञात समाधि –

असम्प्रज्ञात समाधि को निर्बीज समाधि कहते हैं।[83]

इस निर्बीज समाधि को कैवल्य अवस्था भी कहते हैं।[84]

महर्षि घेरण्ड ने समाधि के छः प्रकार बताये हैं, जो निम्न है– ध्यानयोग समाधि, नादयोग समाधि, रसानन्दयोग समाधि, लयसिद्धियोग समाधि, भक्तियोग समाधि एवं राजयोग समाधि जिनकी सिद्धि क्रमशः शाम्भवी मुद्रा, खेचरी मुद्रा, भ्रामरी प्राणायाम, योनि मुद्रा, मनोमूर्च्छा एवं कुम्भक से होती है।[85]

स्वामी स्वात्माराम के अनुसार जब प्राण क्षीण मन्द होकर चित्त में लीन हो जाता है, तब दोनों ही एकरूपता होना ही समाधि कहलाती है।[86]

जीवात्मा और परमात्मा दोनों की एकरूपता और समता हो जाने पर इच्छा मात्र का अभाव हो जाना ही समाधि है।[86] जैसे नमक पानी में घुलकर उसके साथ एकरूप हो जाता है वैसे ही आत्मा एवं मन की एकरूपता ही समाधि है।

महर्षि जी कहते हैं कि समाधि की स्थिति में मनुष्य आत्मज्ञान (आत्म साक्षात्कार) प्राप्त करता है। जिससे वह निर्लिप्त अवस्था की प्राप्ति कर लेता है तथा बिना संशय मुक्ति को प्राप्त करता है।[87]

स्कन्दपुराण के अनुसार

धारणापंचनाड़ीक्ता ध्यानं स्यात् षष्टिनाडिकम्।
दिनद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते।।

समाधि अवस्था की अवधि 12 दिन कही गयी है जो धारणा व ध्यान की अवधि से कहीं अधिक है।

9.0 निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि अष्टांग योग के तत्वों को योग शास्त्रों के अनुशीलन से जानना चाहिए जिसस योग के अंगों की विशेषता (विशेष गुण) को ग्रहण करना सरल और यथार्थ हो जाता है इसमें कोई संदेह नहीं है।

अष्टांग के तत्वों को योग शास्त्रीय अध्ययन से जानने पर यथार्थ ज्ञान होकर भ्रामक धारणाएँ समाप्त हो जाती है। जिससे योग साधक की योग साधना में श्रद्धा बढ़ती है तथा वह जिज्ञासु से साधक और फिर योगी बन जाता है। इस प्रकार अष्टांग योग व्यक्तित्व परिष्कार की उत्तम विद्या है।

10.0 संदर्भ सूची

1 यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि। योगसूत्र–2/29
2 योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्याते। योगसूत्र – 2/28
3 डॉ० विजयपाल शास्त्री, योगविज्ञानप्रदीपिका, पृष्ठ 128
4 अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। योगसूत्र – 2/30
5 जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्।। योगसूत्र – 2/31
6 अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। योगसूत्र – 2/35
7 सत्यं यथार्थे वाग्ङ्मनसे। योगसूत्र व्यास भाष्य – 2/30
8 सत्यंप्रतिष्ठा क्रियाफलाश्रयत्वम्।। योगसूत्र – 2/36
9 स्तेयं परस्वापहरणं तदभावोऽस्तेयम्।। योगदर्शन भोजवृत्ति – 2/30

10 अस्तेयप्रतिष्ठाया सर्वरत्नोपस्थानम्।। योगसूत्र – 2/37
11 ब्रह्मचर्य गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः। योगसूत्र व्यासभाष्य – 2/30
12 सतीश आर्य, पातंजल योगदर्शन, पृष्ठ 380
13 दक्षस्मृति – 7/31–32
14 ब्रह्मचर्यमुपस्थ संयमः। योग सूत्र भोजवृत्ति – 2/30
15 ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः – योगसूत्र 2/38
16 योगसूत्र भोजवृत्ति – 2/30
17 योगसूत्र – 2/32
18 डॉ० विजयपाल शास्त्री, योग विज्ञान प्रदीपिका, पृष्ठ 140
19 पातंजल योगदर्शन, व्यासभाष्य 2/32, पृष्ठ 386, 387
20 योगसूत्र एवं भोजवृत्ति – 2/40
21 पातंजल योगदर्शन व्यासभाष्य – 2/32
22 पातंजल योगदर्शन भोजवृत्ति – 2/32
23 योगसूत्र – 2/42
24 पातंजल योगदर्शन व्यायभाष्य – 2/1
25 मनुस्मृति – 12/104
26 भोजवृत्ति – 2/1
27 तपो द्वन्द्वसहनम्, पातंजल योगदर्शन व्यासभाष्य – 2/32
28 डॉ० शान्तिप्रकाश आत्रेय, योग मनोविज्ञान, पृष्ठ 153
29 गीता – 16/1
30 वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते। मनुस्मृति – 2/141
31 तस्य वाचकः प्रणवः, योग सूत्र – 1/28
32 तज्जपस्तदर्थभावनम्, योग सूत्र – 1/29
33 पातंजल योगदर्शन, व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति – 2/1, 2/32
34 सतीश आर्य, पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित), पृष्ठ 250
35 योगसूत्र – 2/44
36 योगदर्शन, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 44
37 पातंजल योगदर्शन, व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति – 2/1
38 योगसूत्र – 2/45
39 योगसूत्र – 2/46
40 ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, उपासना
41 ततो द्वन्द्वानभिघातः, योगसूत्र – 2/48
42 कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्। हठप्रदीपिका – 1/17
43 पातंजल योगदर्शन, व्यासभाष्य – 2/46
44 घेरण्ड संहिता – 2/3–6
45 हठप्रदीपिका, पृष्ठ 16
46 गीता – 6/10–13
47 योगसूत्र – 2/47

48 तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। योगसूत्र – 2/49
49 पातंजल योगदर्शन, व्यास भाष्य एवं भोजवृत्ति – 2/49
50 ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। योगसूत्र – 2/52
51 धारणासु च योग्यता मनसः। योगसूत्र – 2/53
52 चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।। हठप्रदीपिका – 2/2
53 योगसूत्र – 2/50, 2/51
54 हठप्रदीपिका – 2/71
55 स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। योगसूत्र – 2/54
56 डॉ० विजयपाल शास्त्री, योग विज्ञान प्रदीपिका, पृष्ठ 154
57 ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्। योगसूत्र – 2/55
58 डॉ० विजयपाल शास्त्री, योग विज्ञान प्रदीपिका, पृष्ठ 155
59 घेरण्ड संहिता – 4/1–5
60 गीता – 6/26
61 देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। योग सूत्र – 3/1
62 डॉ० विजयपाल शास्त्री, योग विज्ञान प्रदीपिका, पृष्ठ 155
63 योगतत्त्वोपनिषद्, श्लोक 83
64 घेरण्ड संहिता – 3/2
65 घेरण्ड संहिता – 3/17
66 डॉ० विजयपाल शास्त्री, योग विज्ञानप्रदीपिका, पृष्ठ 156
67 तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। योगसूत्र – 3/2
68 डॉ० विजयपाल शास्त्री, योग विज्ञान प्रदीपिका, पृष्ठ 156, 157
69 स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, घेरण्ड संहिता 1/11, पृष्ठ 339, 341
70 शाण्डिल्योपनिषद् – 1/71
71 साँख्य सूत्र – 3/30
72 ध्यानंनिर्विषयं मनः। साँख्य सूत्र – 6/25
73 तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। योगसूत्र – 3/3
74 पातंजल योगसूत्र, व्यासभाष्य – 3/3
75 पातंजल योगसूत्र भोजवृत्ति – 3/3
76 डॉ विजयपाल शास्त्री, योग विज्ञान प्रदीपिका, पृष्ठ 158
77 ता एव सबीजः समाधिः। योगसूत्र 1/46
78 वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात्सम्प्रज्ञातः। योगसूत्र – 1/17
79 योगसूत्र – 1/42, 43
80 योगसूत्र – 1/44
82 योगसूत्र – 1/51
83 योगसूत्र – 3/50
84 घेरण्ड संहिता – 7/5,6
85 हठप्रदीपिका – 4/5

86 हठप्रदीपिका – 4/6
87 हठप्रदीपिका – 4/4
88 समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः।। घेरण्ड संहिता – 1/1।